OUKA
The University of Osaka
Institutional Knowledge Archive

Title	Poetry of Hindi Poet Nagarjun and the Problem of Hunger
Author(s)	Chaudhary, Harjender
Citation	大阪大学世界言語研究センター論集. 2012, 7, p. 107-119
Version Type	VoR
URL	https://hdl.handle.net/11094/8603
rights	
Note	

The University of Osaka Institutional Knowledge Archive : OUKA

https://ir.library.osaka-u.ac.jp/

The University of Osaka

Poetry of Hindi Poet Nagarjun and the Problem of Hunger

CHAUDHARY Harjender*

Abstract:

Nagarjun (popularly known as Baba Nagarjun) is one of the prominent Hindi authors of twentieth century. He is a poet and novelist and wrote in Maithili and Bengali as well. A variety of human experiences have found expression in his multi-faceted works. Hunger is one of them.

Lack of foodstuff, resulting in hunger, is a major human problem faced by different regions of the world. It is unfortunate and shocking that 925 million people across the globe are compelled to remain hungry even today. South Asia (Indian subcontinent) is probably the worst-hit region on the earth in this regard. Socio-economic hierarchy prevalent in the region accentuates the magnitude of the problem.

Many Hindi poets have written a poem or two concerning the problem of hunger. But Baba Nagarjun has exclusively and noticeably penned down many poems centred on the issue. This brief academic paper seeks to analyze and understand how the problem has been viewed by the poet. On one hand, he sees famine and hunger in a cause-effect relationship, while on the other, he points out that the main cause of lack of food is never completely natural. It is, instead, a creation of human greed leading to unjust distribution of resources. The poet's anger ultimately targets this aspect. His dream of a better future for humans will one day come true, because the hungry people will ultimately stand up to get their due share. Their rise will lead to revolution, shaping a new future for all of us. Thus, for Baba Nagarjun, while hunger is a certain source of human suffering, it is also a probable cause for the shaping of a new future for the deprived classes of the world.

Keywords: Hunger-Problem, Hindi Poetry, Nagarjun

＊ Research Institute for World Languages, Osaka University, Specially Appointed Associate Professor.

हिन्दी कवि नागार्जुन की कविता और भूख की समस्या

हरजेन्द्र चौधरी

दारिद्र्य से बड़ा कोई रोग नहीं। दरिद्रता के संबंध में 'आषाढ़ का एक दिन'[1] में एक संवाद है कि दारिद्र्य छिपता नहीं है बल्कि वह सब गुणों को ढँक लेता है, छा लेता है। सच है। सच यह भी है कि भूख दारिद्र्य की सहोदरा है और अभाव उसका सहोदर है। ये तीनों परस्पर बहन-भाई हैं, सगोत्रीय हैं। दरिद्रता और भूख व्यक्ति की प्रतिभा और उसके गुणों को, यहाँ तक कि उसके आत्मविश्वास को भी चर जाती है या कम से कम रौंद ज़रूर डालती है। भूख आधि और व्याधि दोनों की जननी है। शारीरिक कष्ट भी उत्पन्न करती है और मानसिक क्लेश का भी कारण बनती है।

भूख प्राणिमात्र के अस्तित्व से निरंतर जुड़ी रहने वाली मूल जन्मजात प्रवृत्ति तो है ही, साथ ही इस पृथ्वी पर कहीं न कहीं हर समय वह समस्या के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज़ कराती रही है। आज उपभोग से अघाए यूरोपीय व उत्तरी अमेरिकी क्षेत्रों में भी अतीत में कभी न कभी भूख की समस्या रही है। एशिया व अफ्रीका महाद्वीपों के अनेक इलाकों में वह आज भी मौजूद है। भूख एक शाश्वत उपस्थिति है, परंतु समस्या के रूप में उसका अस्तित्व दरिद्रता या अभाव के फलस्वरूप निर्मित होता है। समस्या के तौर पर उसका दिक्काल स्थानांतरित होता रहता है। कभी कहीं अकाल, कभी कहीं बाढ़, कभी कहीं सूखा तो कभी कहीं घटती उत्पादकता जैसे प्राकृतिक या अर्धप्राकृतिक कारणों से, तो कभी युद्ध, जनविरोधी नीतियों, प्रशासनिक ढील, वितरण-व्यवस्था की खामियों, बाज़ारू लालच व जमाखोरी आदि-आदि की वजह से लोगों की भूख प्रायः कहीं न कहीं एक क्षेत्रीय समस्या का रूप ले ले कर इस पृथ्वी पर अपनी विकट उपस्थिति दर्ज़ कराती रही है।

हिन्दी कविता में भूख की समस्या किसी बहुत विशिष्ट व ध्यानाकर्षक विषय के रूप में तो दिखाई नहीं पड़ती, परंतु दरिद्रता और अभावों के काव्य-विवरणों में बीच-बीच में ज़रूर उपस्थित होती है। हिन्दी गद्य में रांगेय राघव ने बंगाल में पड़े 1942-1943 वाले अकाल व उससे उत्पन्न महामारी को अपनी हृदयस्पर्शी रिपोर्ताज रचना 'तूफानों के बीच'[2] का विषय बनाया था। ये रिपोर्ताज पुस्तक रूप में प्रकाशित होने से पहले 'विशाल भारत'[3] में छप चुके थे। उस रचना को प्रकारांतर से भूख विषय पर रचित विशिष्ट रचना कहा जा सकता है। इस रूप में और इस तर्ज़ पर हिंदी के कुछ ही कवियों ने भूख व उसकी समस्या को काव्य विषय

बनाया है। निराला की 'भिक्षुक'(4) कविता में भिखारी के 'चल रहा लकुटिया टेक, पेट और पीठ दोनों मिलकर हैं एक' जैसे बिम्ब हिन्दी कविता में विरले विवरणों की श्रेणी में आते हैं। दिनकर ने अपनी एक कविता 'माँ की हड्डी से चिपक-ठिठुर जाड़े की रात'(5) बिताने वाले ऐसे भूखे बालकों पर केन्द्रित की है, जिनकी स्थिति बुर्जुआ श्वानों के मुकाबले बहुत बदतर है। यह भूख और आर्थिक विषमता का समांतर वर्णन है।

निराला की परम्परा का विस्तार करने वाले कवि बाबा नागार्जुन(6), उर्फ वैद्यनाथ मिश्र, उर्फ बैजनाथ मिसिर, उर्फ यात्री, इस संदर्भ में विशेष रूप से हमारा ध्यान खींचते हैं। वह किसान कुल में पैदा हुए और लगभग पूरा जीवन घुमक्कड़ी में बिताया। संस्कृत भाषा की पारम्परिक शिक्षा के लिए अपने ज़िले और आसपास के क्षेत्रों के अलावा बनारस और कलकत्ता में भी उन्होंने प्रवास किया। कुछ वर्षों तक श्रीलंका में अध्यापन-कार्य किया। वहीं पर 1937 में बौद्ध धर्म में दीक्षित हो गए। 1938 में श्रीलंका से भारत वापस आने के बाद बिहार के किसान आंदोलन में सक्रियता के कारण उन्हें 1939 और 1940 में दो बार जेल जाना पड़ा। 1941 में भिक्षु का वेष त्यागकर वह फिर से अपने मूल रूप में लौट आए। वृद्धावस्था के दौरान के कुछ वर्षों को छोड़कर निरंतर वे इधर से उधर भटकते रहे। उनके जीवनक्रम को देखकर कहा जा सकता है कि वे विचारों और धारणाओं के प्रति नहीं, बल्कि जीवन और लोगों के प्रति प्रतिबद्ध रहे। उनका यह जुड़ाव उनके किसान-स्वभाव का परिचायक कहा जा सकता है। नागार्जुन को यहाँ मैं किसान-स्वभाव वाला कवि कह रहा हूँ, किसान-कवि नहीं। कवि व व्यक्ति के रूप में नागार्जुन की सादगी, आडंबरहीनता, निडर स्पष्टता व अपने समय से जुड़े यथार्थ-बोध आदि गुणों के कारण उन्हें किसान-स्वभाव वाला कवि कहा जा सकता है । किसान-स्वभाव वाले इस कवि की अनेक कविताओं में भूख और उसकी समस्या को विशिष्ट ध्यानाकर्षक विषय के रूप में रेखांकित किया जा सकता है।

भारत विविधता-सम्पन्न राष्ट्र है, इस बात से हम सब परिचित हैं। पूरा भारत एक जैसा नहीं है, पूरे भारत की समस्याएँ भी एक जैसी नहीं है। जीवनचर्या भी सब जगह समान नहीं है। सामान्य सुख-दुख के साथ-साथ हर जगह के अपने विशिष्ट सुख-दुख हैं।यहाँ के वैविध्यपूर्ण जीवन में नाटकीय उतार-चढ़ाव भी आते रहते है। भारत की विविधता स्थानगत तो है ही, व काल-संदर्भित भी है।मौसमों से बंधी पारम्परिक जीवन-पद्धति कभी कहीं सूखे की मार झेलती है तो कभी कहीं अतिवृष्टि की। यूँ तो सूखे या बाढ़ की चपेट में देश का कोई भी क्षेत्र आ सकता है, पर हिन्दी पट्टी में स्थित हमारा बिहार प्रदेश इस मामले में बहुत बदकिस्मत प्रदेश माना जाता है। इसे प्रायः प्रकृति की नाराज़गी झेलनी पड़ती है। यहाँ आर्थिक-सामाजिक विषमता का भी संभवतः जनजीवन पर अधिक प्रभाव है। इस बात को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं है कि इस क्षेत्र से आने वाले कवि नागार्जुन की कविताओं में आर्थिक विषमता, दरिद्रता व अभावों के साथ-साथ भूख की समस्या के ठोस, अनुभवजन्य विवरण मिलते हैं।

'अकाल और उसके बाद' जैसी संक्षिप्त, संगठित, लययुक्त व तीव्र प्रभाव वाली बिंबात्मक कविता तथा 'अन्न-पचीसी' जैसी लम्बी, स्फीत व विवरणात्मक कविता के अलावा नागार्जुन की अनेक अन्य कविताएँ भी भूख की समस्या को विशिष्ट व ध्यानाकर्षक ढंग से हमारे सामने रखती है। बात नागार्जुन की हो रही है, पर इस क्षण मुझे याद आ रही है अरुण कमल की कविता 'रसोई'। संयोगवश अरुण कमल भी बिहार प्रदेश से हैं। लेख लिखते समय प्रारंभ में ही अरुण कमल की कविता 'रसोई' का स्मरण मुझे इसलिए हो आया है कि यह कविता भूख की समस्या व उसके समाधान से जुड़ी मानवीय गतिविधियों की परिव्याप्ति पर एक चौकन्ने, तर्कपूर्ण वक्तव्य जैसी हैं। मनुष्य की अधिकतर गतिविधियाँ क्षुधा-पूर्ति के इर्द-गिर्द केन्द्रित हैं। भूख मनुष्य की सक्रियता व कर्मठता का बीज-कारण है, यह बात भी इस कविता के माध्यम से उद्घाटित हुई है। कवि ने एक ऐसे साधारण तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया है, जिसके संबंध में हम प्रायः इस तरह से नहीं सोचते। इस क्षण मुझे यह कविता बहुत प्रासांगिक लग रही है, इसलिए इसे यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ।
'रसोई' कविता अनुभवजन्य इतनी नहीं, जितनी सैद्धांतिक हैं। पूरी कविता प्रस्तुत है,

एक दिन बैठे-बैठे उसने
अजीब बात सोची

सारा दिन
खाने में जाता है
खाने की खोज में
खाना पकाने में
खाना खिलाने में
फिर हाथ अँचा फिर उसी दाने की टोह में

सारा दिन सालन अनाज फल मूल
उलटते पलटते काटते कतरते रिंधाते
यों बिता देते हैं जैसे
इस धरती ने बिताए करोड़ों बरस
दाना जुटाते दाना बाँटते
हर जगह हर जीव के मुँह में जीरा डालते
इस तरह यह पूरी धरती
एक लंगर
वाहे गुरू का! (7)

यह कविता एक सैद्धांतिक तथ्य जैसी कविता है। यदि तथ्यों-आँकड़ों की बात करें तो विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमानों के अनुसार विश्व की एक तिहाई जनसंख्या छकी और सुपोषित है, एक तिहाई को कम भोजन पर गुज़ारा करना पड़ता है यानी कुपोषित है और शेष एक तिहाई भूख से जूझते रहने को विवश यानी अपोषित है।

भूख से पीड़ित पृथ्वीवासियों में से आधे लोग भारतीय उपमहाद्वीप के वासी हैं। अफ्रीका तथा शेष एशिया में चालीस प्रतिशत तथा बाकी के क्षुधा-पीड़ित लोग लातीनी अमेरिका तथा विश्व के अन्य हिस्सों में रहते हैं। (8)

संयुक्त राष्ट्र की भूख एवम् विश्व खाद्य कार्यक्रम सम्बंधी रिपोर्ट व खाद्य एवं कृषि संगठन की सांख्यिकी के अनुसार विश्व भर में 925 मिलियन (साढ़े बानवे करोड़) लोग क्षुधा-पीड़ित हैं उनमें से 98 प्रतिशत विकासशील/ अविकसित देशों में रहते है। पृथ्वी पर रहने वाले क्षुधा-पीड़ितों की कुल पैंसठ प्रतिशत जनसंख्या केवल सात देशों में पाई जाती है --- भारत, चीन, कांगो, बांगलादेश, इंडोनेशिया, पाकिस्तान तथा यूथोपिया। इनमें से पाँच देश एशिया में तथा शेष दो देश अफ्रीका महाद्वीप में स्थित हैं।(9)

पृथ्वी पर हर समय कोई न कोई क्षेत्र दुर्भिक्ष-ग्रस्त बना रहता है। इस समय (सितम्बर 2011 में) सोमालिया सूखे और अकाल से जूझ रहा है। संयुक्त राष्ट्र के अधिकारियों के अनुसार अगले कुछ महीनों में सोमालिया में साढ़े सात लाख लोगों के खाद्यान्न-वंचित होने की आशंका है। नब्बे के दशक में भी सोमालिया में अकाल पड़ा था, पर तब अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर मिली सहायता के फलस्वरूप लोगों की तकलीफें कुछ कम हो गई थीं। इस समय हालात अधिक विकट और प्रतिकूल हैं।(10)

अकाल अथवा खाद्यान्न-अभाव घोषित और अघोषित दोनों प्रकार का हो सकता है। कहीं कहीं अकाल पड़ने के बावजूद या अन्न की कमी के बावजूद सरकारें या शासन-व्यवस्थाएँ इस तथ्य को अस्वीकार करने या इसकी उपेक्षा करने को अधिक सुविधाजनक पाती हैं। अकाल या खाद्यान्न-अभाव के मूल कारण हमेशा और पूरी तरह प्राकृतिक कभी नहीं होते, वे आंशिक रूप से मनुष्य-निर्मित ज़रूर होते हैं।

हिन्दी कवि नागार्जुन की कविताओं में अकाल व खाद्यान्न-अभाव की स्थितियों व उनके कारणों से सम्बंधित बिम्बों और विवरणों की बहुलता मिलती है।

नागार्जुन किसान-स्वभाव वाले कवि हैं। उनकी कविताओं में किसान-जीवन से जुड़े बिम्बों और संदर्भों का बहुविध दोहराव भी इसका प्रमाण है। अपनी कविता 'रवि ठाकुर' में वह स्वयं को 'दबी हुई दूब का रूपक'(11) बताते हैं, जिसकी नियति यह हैं कि 'हरा हुआ नहीं, चरने दौड़ते'(12)। ठेठ बचपन से अभाव का आसव पीने वाला यह कवि आटा दाल नमक लकड़ी

के जुगाड़ में अपने जीवन को खपा रहा है। बिल्कुल भारतीय किसान की तरह।

कमल ही मेरा हल है, कुदाल है!!
बहुत बुरा हाल है!!! (13)

दीन-हीन, अपठित कृषक-कुल में पैदा होने वाला यह कवि निरंतर अभावों से जूझने को विवश है। यही कारण है कि नागार्जुन के विपुल रचना-संसार में भूख विषय पर रची गई कविताओं की संख्या काफी प्रभावपूर्ण है। परंतु संख्या, अनुपात या प्रतिशत देखने से अधिक महत्त्वपूर्ण यह देखना है कि यहाँ कथ्य की दृष्टि से भूख विषय पर्याप्त जगह घेरे हुए है। कवि स्वयं ज़िन्दगी को चलाए-बनाए रखने के लिए मूलभूत संसाधनों की उपलब्धता तक सीमित जीवनचर्या के बंधनों में जकड़ा हुआ है। रचनाकर्म भी उसके लिए एक तरह की संसाधन-उत्पादक प्रक्रिया है। उसका ध्यान स्वाभाविक रूप से भूख की समस्या से जूझते लोगों की ओर जाता है

विकल है जनगण
दुर्लभ हैं अन्नकण। (14)

कवि के मन में कभी-कभी अभाव के विपरीत भाव सम्पदा की संभावना के सम्बंध में विचार आता है, पर पछतावा नहीं होता।

बंधु, मेरे पास भी यदि
बाप दादों की उपार्जित भूमि होती
धान होता बखारों में
आम कटहल लीचियों के बाग होते
पोखरा होता मछलियों से भरा
फिर क्या न मैं भी
याद कर प्रथमा द्वितीया या तृतीया(प्रेयसी) को
सात छेदों की रुपहली बाँसुरी में फूँक भरता। (15)

पर भूखे खेतिहरों का स्वर कवि को दसों दिशाओं में गूँजता सुनाई पड़ता है।

झूठ-मूठ सुजला-सुफला के गीत न हम अब गाएँगे,
भात-दाल-तरकारी जब तक नहीं पेट भर पाएँगे।(16)

कवि की दृष्टि बिहार तक सीमित नहीं है, उसकी नज़रों के आगे पूरा भारत है। जिस देश में किसान भूखे हों, वहाँ जीवन-स्थितियाँ कितनी नारकीय हो सकती हैं, अनुमान लगाना मुश्किल नहीं है। 'मलाबार के खेतिहरों को अन्न चाहिये खाने को', किसानों का अन्न के लिये तरसना एक अति विकट और असंभव सी लगने वाली स्थिति हैं। ऐसी स्थितियों की गंभीरता को पूरी प्रभविष्णुता के साथ संप्रेषित करने के लिए नागार्जुन प्रायः व्यंग्य का पल्ला पकड़ते हैंः

माल मिलेगा रेत सको यदि गला मजूर किसानों का
हम मरभुक्खों से क्या होगा, चरण गहो श्रीमानों का।(17)

इससे एकदम अगली कविता है 'कवि-कोकिल' जिसकी प्रारंभिक पंक्तियाँ हैं

भूख-प्यास से जिसने भी की मर्मांतक चीत्कार
उस बेचारे की गुस्ताखी सह न सकी सरकार। (18)

प्रशासनिक व्यवस्था भूखों-प्यासों के प्रति संवेदनशील नहीं है, उल्टे कुपित है। यह सरकार द्वारा अपने उत्तरदायित्व से बचने की मनोवृत्ति का प्रमाण व परिणाम है। उधर जनसामान्य के पेट में भूख नगाड़े की तरह बजती रहती है

खाली हैं हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट। (खाली नहीं और खाली) (19)

नागार्जुन निरंतर विक्षुब्ध रहने वाले कवि हैं, विक्षोभ रस के रचनाकार हैं। अपने निबंध 'विषकीट' में नागार्जुन कहते हैं, 'भारतीय काव्य की समीक्षा में नौ रस माने गए हैं। परंतु अपनी कटु तिक्त चरपरी रचना के सिलसिले में मुझे एक और ही रस की अनुभूति होने लगी है। यह था विक्षोभ रस।..... बहुजन समाज की व्यापक विपन्नता से यदि आपका प्रत्यक्ष परिचय है, तब आपको विक्षोभ रस का अनुभव होगा। दरिद्रता, अज्ञान, गुलामी, रूढ़िग्रस्तता, रोग, विषमता इनके प्रति हमारे मन में चरम घृणा का अनुभव नहीं हुआ तो हम बड़ी प्रवंचना के शिकार होंगे। गरीबी की सीमा रेखा से नीचे रहने वालों की संख्या दस-पाँच लाख की नहीं है, यह तो हमारी सम्पूर्ण जनसंख्या के आधे से ऊपर चली गई है। ऐसी स्थिति में यदि मेरी चेतना विक्षुब्ध भावभूमि पर विराजमान हो गई तो अस्वाभाविक नहीं है।'(20)

खाद्यान्न के अभाव व उससे उत्पन्न भुखमरी की समस्या सामने दिखाई पड़ने पर नागार्जुन शासन और सरकार पर निशाना साधते हैं। उनके विक्षोभ का लक्ष्य सरकारें और उनकी जनविरोधी नीतियाँ बनती है। मैनेजर पांडेय का आकलन दृष्टव्य है, 'अंग्रेज़ी राज के

समय में अकाल और भुखमरी से करोड़ों लोगों की मौत का सच और उसका कारण नागार्जुन की समझ में आता है, लेकिन आज़ाद भारत में लोगों का भूख से मरना उनको भारतीय गणतंत्र पर धब्बा लगता है। इसीलिये उनके मन में विक्षोभ पैदा होता है'।(21)

विक्षुब्ध कवि के लिए व्यंग्य की शरण में जाना स्वाभाविक रचना- मार्ग है। नागार्जुन निरंतर इस रचना-मार्ग पर आवाजाही करने वाले कवि है। आवाजाही करते हैं, और अपनी सृजन-यात्रा को उसी एक मार्ग से बाँधकर नहीं रखते। विष्णु नागर ने नागार्जुन पर लिखे अपने लेख का सटीक शीर्षक देकर नागार्जुन के काव्य-वैविध्य की ओर संकेत किया है कि 'ये सिर्फ व्यंग्य कवि नहीं हैं।'(22)

कहीं-कहीं उनके व्यंग्य इतने गहरे हैं कि उनसे उमड़-उमड़ आती विक्षोभ रस की धारा तुरंत ही पाठक-मन को तरबतर कर देती है।

बताऊँ?
कैसे लगते हैं
दरिद्र देश के धनिक?
कोढ़ी कुढब तन पर मणिमय आभूषण!!(23)

आर्थिक विषमता को लेकर नागार्जुन ही नहीं, अधिकतर हिंदी कवि विक्षुब्ध दिखाई पड़ते हैं। पर नागार्जुन का यह विक्षोभ सैद्धांतिक न होकर अनुभवगत है, इसलिए वह अधिक खरा और प्रभावी है। 'वह तो था बीमार' और 'नाहक ही डर गई हुजूर' जैसी कविताएँ अफसरशाही व प्रशासनिक व्यवस्था की क्रूर चालाकियों और उसके भीतर पैठे भय को व्यक्त करने के कारण गहरे व्यंग्य और विक्षोभ की कविताएँ बन जाती हैं। दोनों कविताओं का केन्द्रीय विषय अकाल और भुखमरी है। सपने में जब 'एस. डी. ओ. की गुड़िया बीवी' भय से घिघियाने लगती है तब नौकर उसे समझाता है 'नाहक ही डर गई हुजूर! वह अकाल वाला थाना पड़ता है काफी दूर!'(24) यानी अफसरशाही के मन में भय व्याप्त है कि अकाल-पीड़ित लोग कभी भी बंदूक उठा कर उस पर आक्रमण कर सकते हैं। यह कविता भूख और आर्थिक ऊँच-नीच की संश्लिष्ट अभिव्यक्ति है।

सरकार अपनी जनविरोधी नीतियों और अपने ढुलमुलपन से उपजी परेशानियों को छुपाने के लिए मिथ्या रिपोर्टिंग का सहारा लेती हैं, भुखमरी के तथ्य को प्रायः स्वीकार नहीं किया जाता। 'वह तो था बीमार' कविता में नागार्जुन ने थानेदार के व्यवहार के माध्यम से सरकार की कलई खोली है।

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से वह तो था बीमार (25)

यहाँ भी स्थितिजन्य व्यंग्य है। नागार्जुन का विक्षोभ रस यहाँ व्यंग्य के सहारे अवतरित हुआ है। सरकारें अन्नाभाव और भुखमरी के तथ्य के नकार तक ही सीमित नहीं रहतीं, बल्कि अपनी ओर से ऐसे तथ्य पेश करती हैं जिनसे लगे कि अन्न के अभाव व भुखमरी की समस्या का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है।

मंत्रियों ने बताई है अन्न की इफरात
लेकिन यहाँ तो अभी सपना हो गया है भात। (26)

'चीलों की चली बारात' कविता से उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियाँ अन्नाभाव के साथ-साथ आर्थिक-भौतिक उपलब्धता के असमान वितरण की ओर भी संकेत करती हैं। बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों का हवाई दौरा करने वाले नेता नागार्जुन को उन चीलों जैसे लगते हैं जो पृथ्वी पर सूनी पड़ी लाशों की तलाश में हवाओं में मँड़राती रहती हैं। यानी नागार्जुन का विक्षोभ यहाँ प्रकृति के प्रति नहीं, लालची और कमीने सत्ताधारियों के विरुद्ध व्यक्त हो रहा है।

उधर जनसाधारण की अभावग्रस्तता की स्थिति यह है कि उसे भोजन जुटाने की चिंता के अलावा कुछ सूझता ही नहीं। 'अन्न-पचीसी' कविता में जन-चिंता इस प्रकार व्यक्त हुई है

भत्ता खींचें भले विधायक, हमें चाहिए दाना
आपस में उलझें जननायक, हमें चाहिए दाना। (27)

इस तरह की निष्क्रियता और चिंतातुरता के साथ-साथ नागार्जुन की कविताओं में जनसाधारण के सक्रिय होने, विद्रोह व क्रांति करने की संभावनाएँ भी सामने आती हैं

कूच करेंगे भुक्खड़, थर्राएगी दुनिया सारी
काम न आएँगे रत्ती-भर विधि-निषेध सरकारी.....
...जन-जन में विद्रोह भरेगी अन्नब्रह्म की माया
गुर्बत का मैदान चरेगी अन्नब्रह्म की माया
भूखों का भवताप हरेगी अन्नब्रह्म की माया
दुःख में सुख-संचार करेगी अन्नब्रह्म की माया
.....जन-जन में करवट लेती है अन्नब्रह्म की माया
विप्लव के अंडे सेती है अन्नब्रह्म की माया
..... हरी चूनरी, लाल घाघरा, भूख भवानी आई
दुखियों की माँ मजलूमों की अपनी रानी आई

महाकाल की मौसी आई, यम की नानी आई। (28)

भूख महाकाल की मौसी और यमराज की नानी है अर्थात् वह मृत्यु की समधन है। वह या तो भुखमरी के शिकार लोगों की जान लेगी या फिर उनकी जो इस भुखमरी के लिये जिम्मेदार हैं। या तो मरो, या मारो। नागार्जुन विक्षोभ रस के किसान-स्वभाव वाले कवि हैं, डायरेक्ट एक्शन की भी बात करते हैं। उनके विचार से भूख अंततः विद्रोह और क्रांति का कारण बनेगी। भूख ही विप्लव के अंडे से कर भूखों का भवताप हरेगी। नागार्जुन आक्रामकता व हिंसा का भी समर्थन करते हैं,

छीन सके तो छीन ले लूट सके तो लूट
मिल सकती कैसे भला अन्नचोर को छूट। (29)

अन्न जीवनी-शक्ति का स्रोत है। भोजन के बिना प्राणी अपने अस्तित्व को बनाए नहीं रख सकता। उसकी जिजीविषा अंततः उसे हिंसक व आक्रामक बना देती है अन्न के महत्त्व और उसकी अनिवार्यता सम्बंधी नागार्जुनीय उवाच इसी तथ्य को उघाड़ता है

अन्न ब्रह्म ही ब्रह्म है, बाकी ब्रह्म पिशाच
औघड़ मैथिल नाग जी अर्जुन यही उवाच (30)

नागार्जुन ने अपने रचनाकर्म में भूख की कोई सैद्धांतिकी गढ़ने का प्रयास नहीं किया है, क्योंकि वह उनके लिए एक ठोस समस्या है। अपने और अपने आसपास के लोगों के अनुभवों की आँच उनकी भूख सम्बंधी कविताओं में व्याप्त है। नागार्जुन अपने समय और उसके बदलावों पर पैनी दृष्टि रखने वाले कवि हैं, इसलिए उनके परिवेश में जो कुछ घटित होता है, उस पर स्वतः ही उनकी कलम चलने लगती है। भूख उनके परिवेश व अनुभवों की जड़ों में उपस्थित समस्या है, इसीलिए इस विषय पर उन्होंने इतनी सारी कविताएँ लिखी हैं। हिन्दी में दूसरा ऐसा कोई कवि नहीं है जो इस संदर्भ में नागार्जुन के समकक्ष रखा जा सके। भूख की समस्या को नागार्जुन ने विशिष्ट और ध्यानाकर्षक ढंग से अपनी कविताओं में उठाया है। भारत में, संसार में, भूख की समस्या आज भी लगभग उसी रूप में मौजूद है, जिस रूप में वह नागार्जुन के जीवन-काल (1911-1998) व रचना-काल (1929-1997) के दौरान थी। स्वाभाविक है कि अपने समकालीन घटनाक्रम और चतुर्दिक व्याप्त परिवेशगत-यथार्थ के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने वाले कवि नागार्जुन के रचनाक्रम में इस समस्या को एक महत्त्वपूर्ण स्थान मिला है।

भूख पर लिखी गई अन्य कवियों की कविताओं में भोक्ता और कवि दो अलग-अलग इकाइयों के रूप में दिखाई पड़ते हैं, जबकि नागार्जुन की इन /ऐसी कविताओं में भोक्ता और कवि के

बीच अद्वैत की स्थिति दिखाई पड़ती है। इन में निजी अनुभवों या अपनों के अनुभवों की तेज आँच व्याप्त है। संभवतः यही कारण है कि 1965 के बाद ऐसी कविताओं की रचना नहीं की गई। उसके बाद कवि-मन पर गहरा राजनैतिक-बोध व तत्संबंधी आक्रोश हावी रहा। भूख , अभाव, महँगाई आदि विषयों पर लिखते हुए कवि राजनीति, राजनेताओं (मूलतः कांग्रेसियों) और सरकारी नीतियों को अपना निशाना बनाता है। 1965-1966 तक की अधिकतर भूख संबंधी कविताओं में भूख का विवरण 'अनुभव', 'परिणाम' या 'स्थिति' के रूप में मिलता है तथा उसके बाद की कविताओं में इस समस्या के 'कारणों' पर कवि का ध्यान अधिक केन्द्रित रहा है। इनमें से प्रथम दौर की कविताएँ बहुत ही प्रभावपूर्ण और मार्मिक बन पड़ी हैं। 1961 से 1965 तक की अल्प अवधि बंगला में भूखी पीढ़ी के दबदबे का दौर रहा, पर हिंदी में राजकमल चौधरी जैसे एकाध कवि को छोड़कर कोई महत्त्वपूर्ण कवि भूखी पीढ़ी के उस आंदोलन में रचनात्मक भागीदारी नहीं कर सका। 'भूखी पीढ़ी की कविता' हिंदी में मात्र एक नारा बनकर रह गई। हिंदी में वह उस तरह रचनात्मक आंदोलन का रूप नहीं ले पाई, जिस तरह बंगला भाषा में। हाँ, उस पर हिंदी में लेख ज़रूर लिखे गए। स्वयं नागार्जुन उस आंदोलन के प्रति सचेत थे। राजकमल चौधरी पर लिखी गई उनकी कविताएँ ('चौधरी राजकमल', 'अच्छा किया उठ गए हो दुष्ट!') इसका प्रमाण हैं। परंतु नागार्जुन के काव्य-वैविध्य को देखते हुए तो स्पष्ट है कि नागार्जुन अपनी ऊबड़-खाबड़ व टेढ़ी-मेढ़ी राहों पर चलने वाले कवि हैं, किसी नारे या आंदोलन की पूर्व-निर्धारित, पूर्व-निर्मित पगडंडियाँ उन्हें स्वीकार्य नहीं थीं।

भूख बहुविध क्लेश और अवसाद का स्रोत है, पर नागार्जुन जैसे मार्क्सवादी कवि के लिए वह किसी आमूलचूल परिवर्तन अथवा क्रांति का मूल कारण होने की संभावना से भरा तथ्य भी है। जगह जगह ऐसे प्रसंग उनकी कविताओं में आते हैं जिनसे पता चलता है कि ये अमानवीय प्रतिकूल स्थितियाँ बदलेंगी, ये विषमताएँ मिट जाएँगी, जन-भविष्य बेहतर होगा, आज़ादी केवल दो-दो आने में बिकने वाली कागज़ी चीज़ मात्र नहीं रहेगी, बल्कि वह जनसाधारण के दुःख-मोचन और सुख-उपलब्धि का आधार बनने वाली वास्तविकता बनेगी। भविष्य की बेहतरी में नागार्जुन का बहुत गहरा विश्वास है।

हम पाठकों की दृष्टि में नागार्जुन की कविता और भूख की समस्या का परस्पर गहरा जुड़ाव है और इस कवि की दृष्टि में संभवतः भूख और बेहतर भविष्य का कारण-कार्य संबंध है। आर्थिक विषमता से उत्पन्न अभाव और भूख की समस्या नागार्जुन के भीतर ऐसा विक्षोभ जगाती है, जो प्रकारांतर से जनविक्षोभ है। कवि की दृष्टि में यह जनविक्षोभ बहिर्मुख व सक्रिय होकर बेहतर भविष्य की संभावनाओं को साकार करने वाला काव्य तत्त्व है। इस संदर्भ में नागार्जुन हिंदी के विरले कवि के रूप में हमारे सामने आते हैं।

संदर्भ सूची

1. राकेश, मोहन (1925-1972), विशिष्ट संस्करण 1969,*आषाढ़ का एक एक दिन* ,राजपाल एंड संस, दिल्ली, पृष्ठ 109

2. राघव, रांगेय (1923-1962), मई 1978 संस्करण, *तूफानों के बीच*, शब्दकार, दिल्ली

3. *विशाल भारत*, तत्कालीन सुप्रसिद्ध हिंदी मासिक, जिसे 1928 से कलकत्ता से, रामानंद चट्टोपाध्याय (1865-1943) ने निकालना प्रारंभ किया था।

4. निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी (1899-1961) प्रथम संस्करण 1983, *निराला रचनावली*(भाग एक), संपादक नंदकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 64-65
('भिक्षुक' कविता कलकत्ता से प्रकाशित मतवाला में (17 नवम्बर 1923) प्रकाशित तथा निराला के *परिमल* (1929) कविता-संग्रह में संकलित है)

5. दिनकर, रामधारी सिंह (1908-1974) प्रथम संस्करण 1974, *रश्मि लोक*, स्टार पब्लिकेशंस ,नई दिल्ली, पृष्ठ 51, (संदर्भित पंक्तियाँ दिनकर की 'विपथगा' नामक कविता में है, जो उनके *हुंकार* (1938) कविता-संग्रह में संकलित है।)

6. कवि (1911-1998) का मूल नाम वैद्यनाथ मिश्र (बोली में वैजनाथ मिसिर) था, जो हिंदी में नागार्जुन के नाम से तथा मैथिली में यात्री के नाम से लिखते थे।

7.कमल, अरुण, (1954-), http://www.kavitakosh.org/kk/index.php?title=अरुण कमल (28 जुलाई, 2011)

8. http://library.thinkquest.org/C002291/high/present/stats.htm (15 सितंबर, 2011)

9.http://www.wfp.org/stories/fighting-hunger-things-remember-about-2010_ (15 सितंबर, 2011)

10. एक समाचार, 17 सितंबर 2011, Hindustan Times, New Delhi, पृष्ठ 19

11,12, नागार्जुन , शोभाकांत (संपादक) प्रथम संस्करण 2003, *नागार्जुन रचनावली*—1, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 31, (कविता, 'रवि ठाकुर', *युगधारा*)

13. वही पृष्ठ 31

14, वही पृष्ठ 32

15. वही पृष्ठ 73 ('एक मित्र को पत्र', *युगधारा;* हंस अगस्त 1946)

16. वही पृष्ठ 100 ('लाल भवानी', *हज़ार-हज़ार बाँहों वाली;* हंस अप्रैल 1948)

17. वही पृष्ठ 106 ('सच न बोलना', *हज़ार-हज़ार बाँहों वाली;* हंस जुलाई 1948)

18. वही पृष्ठ 106 ('कवि कोकिल', *युगधारा;* हंस जुलाई 1948)

19. वही पृष्ठ 119 ('खाली नहीं और खाली' *युगधारा*)

20 पांडेय मैनेजर, 'नागार्जुन के यहाँ विक्षोभ रस' लेख से उद्धृत ; कृषक राजकुमार (संपादक)

जनवरी-फरवरी 2011, *अलाव* पत्रिका, दिल्ली, पृष्ठ 23

21. वही, पृष्ठ 26

22. सिंह, मुरली मनोहर प्रसाद; चौहान, चंचल (संपादक) जनवरी-जून (संयुक्तांक) 2011, *नया पथ* पत्रिका (नागार्जुन विशेषांक) नई दिल्ली, पृष्ठ 280

23. नागार्जुन, शोभाकांत (संपादक), प्रथम संस्करण 2003, *नागार्जुन रचनावली—1*, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 242('बताऊँ?', *हज़ार-हज़ार बाँहों वाली*; *नया पथ*, अगस्त 1953)

24. वही पृष्ठ 254 ('नाहक ही डर गई हुजूर', *हज़ार-हज़ार बाँहों वाली*)

25. वही पृष्ठ 253 ('वह तो था बीमार', *हज़ार-हज़ार बाँहों वाली*)

26. वही पृष्ठ 255 ('चीलों की चली बारात', *पुरानी जूतियों का कोरस*)

27. वही पृष्ठ 395 ('अन्न-पचीसी', *पुरानी जूतियों का कोरस*)

28. वही पृष्ठ 396-8, (वही)

29. वही पृष्ठ 399, (वही)

30. वही, पृष्ठ 399, (वही)

(2012. 01. 12 受理)